शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

डॉ० एस० बी० के० 'शशि'
हिन्दी विभाग, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर (बिहार)

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

इक्कीसवीं सदी की चुनौतियाँ और हिन्दी कविता

– डॉ० एस० बी० के० 'शशि'*

इक्कीसवीं सदी क्षिप्र परिवर्तन की सदी है। इस सदी में पूरी दुनिया का कायान्तरण हुआ है। हिन्दी कविता के आलोक में भाषा-संवेदना में होने वाले परिवर्तन और इस सदी की कविता की चिंताओं को यह शोध आलेख रेखांकित करता है।

विषय संकेतः- इक्कीसवीं सदी एवं हिन्दी कविता, समकालीन कविता, वर्तमान साहित्य, अद्यतन कविता और कवि

अनंत समय का प्रवाह आदिम युग के पूर्व सृष्टि के आरंभ से अब तक निरंतर प्रवहमान है। इस प्रवहमान अनंत समय के जिस कालखंड में हम आज रह रहे हैं, कालगणना की दृष्टि से ईस्वी सन् के अनुसार यह इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक का है। लगभग एक दशक पूर्व अतीत हो चुकी बीसवीं सदी मानव सभ्यता के इतिहास में मनुष्य की जयगाथा की सदी के रूप में अंकित और अमिट हो चुकी है। इस सदी में मनुष्य ने अपनी अदम्य जिजीविषा और ज्ञान-विज्ञान के विकास से अर्जित भौतिक उपलब्धियों से मानव सभ्यता के नये अध्याय का आरंभ किया है।

इस सदी में विश्व के अधिकांश देशों को औपनिवेशिक दासता की बेड़ी से मुक्ति मिली। मनुष्य के पैरों के निशान चाँद के धरातल पर सैकड़ों वर्षों से जमी धूल पर अंकित हुए। संहारक परमाणु बम से परमाणु ऊर्जा के अक्षय स्रोत की प्राप्ति हुई। विश्व के बड़े और महत्वाकांक्षी देशों के अहं के परस्पर टकराहट के फलस्वरूप दो महाविनाशकारी विश्वयुद्ध हुए, जिसमें लाखों मनुष्य काल-कलवित हुए। अपार संपदा विनष्ट हुई, मानवता लज्जित और पराजित हुई। रेडियम जैसे प्राणदायी तत्व की खोज हुई। मनुष्य ने प्रकृति और जीवन के रहस्य को भेदकर क्लोन के माध्यम से प्राणी का प्रतिरूप गढ़ने में सफलता पायी। मलेरिया, प्लेग और पोलियो जैसी महामारियों पर विजय पाई। औद्योगिक क्रांति अपने उत्कर्ष पर पहुँची। कम्प्यूटर, इंटरनेट और मोबाईल, सूचना संचार क्रांति का वाहक बना। चाँद-तारों से लेकर सागर की अतल गहराईयों की अभेद्य दीवारों को भेदकर मनुष्य ने अपनी जिज्ञासा को शांत करने की कोशिश की। ज्ञान, विज्ञान और नयी सामाजिकता की ये उपलब्धियाँ बोसवीं सदी की हैं और इस तरह मानव सभ्यता के विकास के इतिहास में बीसवीं सदी एक ऐतिहासिक सदी के रूप में दर्ज हो चुकी है। और आज हम इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के अंतिम वर्ष में है। इस एक दशक में मानवीय उपलब्धियाँ और तीव्र गति से आगे बढ़ी है, विशेषकर संचार माध्यम के गुणात्मक विकास ने विश्वग्राम की कल्पना को साकार कर दिया है। आने वाले दिनों में मनुष्य की यह जय यात्रा और आगे बढ़ेगी इसमें संदेह नहीं, परंतु इन उपलब्धियों का एक पक्ष यह भी हैं कि एक तरफ तो मनुष्य सुदूर ग्रहों की यात्रा कर रहा है दूसरी तरफ मनुष्य से मनुष्य की संवेदनात्मक दूरी बढ़ रही है। भौतिक संसाधनों के अंबार के बावजूद मनुष्य निरंतर अकेला पड़ता जा रहा है। मानवीय संवेदनाएँ सूखती जा रही हैं और इस विश्वग्राम में मनुष्य अजनबीपन का शिकार हो गया है।

भौतिक संसाधन के साधन न होकर, साध्य में बदल जाने से साहित्य, कला और संस्कृति प्रभावित हुई है। बीसवीं सदी के अंत में अमेरिका-इराक युद्ध, धार्मिक उन्माद का अतिरेक, आतंकवाद का वैश्विक प्रसार, आर्थिक मंदी और विश्व के अधिकांश देशों में भूखमरी, कुपोषण, बेरोजगारी, अशिक्षा, शोषण, महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार, आर्थिक शोषण, लैंगिक असमानता और ग्लोबल वार्मिंग आदि समस्याओं ने यह सोचने पर बाध्य कर दिया है कि यह विकास सकारात्मक है या नकारात्मक, ये समस्याएँ इक्कीसवीं सदी के इस एक दशक में और अधिक बढ़ी हैं, बीसवीं सदी शेष उन्नीस सदियों के बीच विभाजक रेखा है। ''यूँ तो प्रत्येक सदी की घटनाओं की एक गति होती है। लेकिन बीसवीं सदी की घटनाओं की गति अन्य सदियों की घटनाओं की तुलना

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

इक्कीसवीं सदी की चुनौतियाँ और हिन्दी कविता

डॉ० एस० बी० के०'शशि'
हिन्दी विभाग, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर (बिहार)

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

में क्रांतिकारी रही है। यह अन्यों से तीव्र रही है। एक मायने में बहुआयामी, परस्पर विभाजनात्मक और आक्रामक ढ़ंग से वर्चस्ववादी रही है। इसने कई मिथकों को तोड़ा है और नए गढ़े भी हैं।''[1] इक्कीसवीं सदी में घटनाओं की गति और अधिक बढ़ेगी, इस सदी के पहले दशक के अंत के साथ ही यह स्पष्ट दिख रहा है। साहित्य, कला और संस्कृति मानवीय संवेदनाओं को जीवित रखने का, सामाजिकता को गति प्रदान करने का मानवीय उपक्रम है, मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम है, जो भौतिक संसाधनों के अंबार के बावजूद संकट में है। बीसवीं सदी में भी इन संकटों का सामना करते हुए साहित्य, कला और संस्कृति ने सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया। कविता साहित्य की आदिम विधा है। हिन्दी कविता आरंभ से ही मानवीय संवेदनाओं की संवाहिका और प्रगतिकामी रही है। अपने समय की समस्याओं, जीवन-मूल्यों के क्षरण, शोषण, पराधीनता और मनुष्यता के संकट के प्रति चिन्ता और प्रतिरोध इसका केन्द्रीय भाव रहा है। इक्कोसवीं सदी की चुनौतियों को लेकर भी हिन्दी कविता सजग है। मल्टीकाम्पलेक्स, शॉपिंग मॉल्स, जीवन को प्रभावित करनेवाली राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं, भूमंडलीकरण और बाजारवाद को लेकर हिन्दी कविता सजग और जीवन-मूल्यों की पक्षधर है। जीवन मूल्यों के क्षरण के प्रति चिन्तित हिन्दी कविता अमानवीयता के विरोध में एक सशक्त प्रतिपक्ष की भूमिका में अपने युगधर्म का निर्वाह कर रही है।

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की हिन्दी कविता के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्यता को बचाये रखना ही उसका केन्द्रीय भाव है। वर्त्तमान समय की भयावह परिस्थितियों से घिरे जीवन का चित्रण इस सदी की चुनौतियों को उजागर करता है। ***''घरघराते हवाई जहाज सुबह-सुबह भरते हैं उड़ान। बुरी खबरें हमारे दरवाजों पर फेंक दी जाती हैं। किसी का ध्यान नहीं गया इस ओर शायद। कितनी लंबी हो गई है हमारे जीवन की रातें सुबहें कितनी छोटी''***[2] यह हमारे समय की सच्चाई है कि जीवन में बढ़ती आपाधापी और जीवन मूल्यों के क्षरण के बीच हम एक अनिश्चय के वातावरण में रह रहे हैं। ऐसे वातावरण में जहाँ मानव मन सदा किसी अप्रिय घटना या अनहोनी के घटने के संत्रास में घुट रहा है। वैश्विक पूँजी का कुचक्र इक्कीसवीं सदी में बढ़ेगा और अपनी आर्थिक शक्ति से जीवन, विरोधी परिस्थितियों का निर्माण करेगा। पूँजी और विचार का संबंध हमेशा से विरोधाभासी रहा है। यह पूँजी मनुष्य की अस्मिता, संप्रभुता, मानवीय सभ्यता, संस्कृति, साहित्यिक-सृजन और आलोचनात्मक विवेक को क्षति पहुँचा रही है।

इक्कीसवीं सदी की चुनौतियाँ और साहित्य, कला, संस्कृति की चिन्तन भूमि पर विचार करते हुए एक प्रश्न उठता है कि मनुष्यता पर आये संकट तथा समकालीन प्रश्नों को लेकर इनकी भूमिका क्या रही है? विशेष रूप से हिन्दी कविता की विगत भूमिका का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि इसकी भूमिका जनोन्मुखी रही है। ''यूँ तो सभ्यता-विमर्श निर्मित करना बुनियादी तौर पर कविता की जिम्मेदारी नहीं है, लेकिन यह मनुष्य की नैतिक और संवेदनात्मक बुनावट की पड़ताल करते हुए कई बार ऐसा करती भी है। क्या तुलसीदास के समकालीन समाज की मीमांसा के रूप में 'रामचरितमानस' को पढ़ा नहीं जा सकता? 'कामायनी' में बुद्धिवाद के उभार और पतन का क्या कोई साभ्यतिक संदर्भ नहीं? या स्वयं 'कामायनी' को सभ्यता-समीक्षा के एक साक्ष्य के तौर पर पढ़नेवाले कवि मुक्तिबोध की काव्य चेतना में पश्चिमी सभ्यता के दो विरोधी संस्करणों, साम्यवाद और पूँजीवाद के टकराव को अलक्षित किया जा सकता है?''[3]

निश्चित रूप से माना जा सकता है कि 'कामायनी' में प्रसाद की सभ्यता दृष्टि को राष्ट्रीय जागरण की वैचारिक पृष्ठभूमि में या मुक्तिबोध की सभ्यता समीक्षा को शीत युद्ध में देखना ही उचित होगा। इस सदी की चुनौतियाँ तकनीकी विकास और पूँजीवाद के गर्भ से ही जन्म ले रही हैं और अपने वैश्विक प्रसार से एक ऐसी आर्थिक सभ्यता का निर्माण करना चाहती हैं, जिसके केन्द्र में मनुष्य नहीं अमानवीय पूँजी है। ''यह आशंका अब सच्चाई में बदल रही है कि एक समय वस्तुएँ मनुष्य को उसकी रची सभ्यता से ही विस्थापित कर देंगी। यह मानव केन्द्रित संसार के वस्तुकेन्द्रित संसार में रूपान्तरण का दौर है। यह स्थूल अर्थ में प्रकृति परिवेश या जैव विविधता के नष्ट होने से कहीं ज्यादा बड़े संकट का मानवीयता के क्षरण का समय है। इसका सामना करना कविता की नियति है।''[4] हमारे समय की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि वैश्विक पूँजी द्वारा रचे जा रहे

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

इक्कीसवीं सदी की चुनौतियाँ और हिन्दी कविता

डॉ० एस० बी० के०'शशि'
हिन्दी विभाग, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर (बिहार)

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

वस्तुकेन्द्रित समाज के निर्माण की प्रक्रिया ने मनुष्य या मानवेत्तर प्राणियों को ही नहीं, पृथ्वी के अस्तित्व को भी अपने नितांत भौतिक आचरण से खतरे में डाल दिया है। इस वस्तुकेन्द्रित समय का प्रतिरोध हिन्दी कविता कर रही है, वस्तु जगत की द्वन्द्वात्मकता में और जीवन मूल्य संदर्भों के मध्य से जीवन की खोती जा रही संवेदना को ढूँढ़ने का मार्ग तलाश रही है। इस मार्ग की तलाश हिन्दी कविता की मनुष्यता को बचाये रखने की चिन्ता है। ***''अचानक खो जाती हैं। पेड़-पौधों की कुछ प्रजातियाँ/अचानक खो जाते हैं कुछ कीड़े, कुछ मकौड़े/अचानक खो जाते है, संकरी होती पृथ्वी पर/रेंगने में असमर्थ सरीसृप जगत के कुछ सदस्य/अचानक खो जाते हैं। हमारे साथ हँसते-बतियाते कुछ लोग/अपनी पूरी प्रजाति के साथ''***[5] हिन्दी कविता में संपूर्ण सृष्टि की संपूर्णता को सुरक्षित रखने की चिन्ता है क्योंकि इक्कीसवीं सदी में सृष्टि पर मंडरा रहे खतरे के इस संकट काल में वह शुभ और सुन्दर को जीवन में बचाये रखना चाहती है।

इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों में एक बड़ी चुनौती वैश्विक स्तर पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विस्तार, चंचल वित्त पूँजी और लचीली उत्पादन व्यवस्था द्वारा निर्मित्त उत्तर आधुनिकतावाद है, जिसने एक नयी तरह की विखंडित मानसिकता को जन्म दिया है। जिस प्रकार पूँजीवाद ने अपने उदय के साथ ही उत्पादन की सारी शक्तियों पर धीरे-धीरे अपना नियंत्रण कर लिया, उसी प्रकार उत्तर आधुनिकता भी मानव संस्कृति के सभी रूपों पर अधिकार करती जा रही है। 20वीं शताब्दी के अंतिम दो-तीन दशक में मानव सभ्यता और संस्कृति के विश्लेषक फ्रेडिक जेमेसन का मानना है कि उत्तर आधुनिकता की विवेचना में इतिहासबोध को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। हमें यह परिप्रेक्ष्य सामने रखना होगा कि युद्ध के बाद 20 के दशक में अमेरिका में और 60 के दशक में यूरोप में नयी अर्थव्यवस्था ने जन्म लिया। यदि आधुनिकता का संबंध इजारेदार पूँजीवादी व्यवस्था से था तो उत्तर आधुनिकता का संबंध 60 के दशक में उभरी वैश्विक पूँजी से है। बहुराष्ट्रीय निगमों की पूँजी पर आधारित उत्पादन और बाजार की परिस्थितियों ने समकालीन मनुष्य समाज में संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र को अपने कब्जे में ले लिया है। इस प्रकार आधुनिक समय ने संस्कृति और वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया को पूरी तरह से एकीकृत कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप संस्कृति में मौजूद प्रतिपक्ष और उसकी आलोचनात्मक भूमिका अब लगभग समाप्त हो गयी है।

वास्तविकता यह है कि उत्तर आधुनिकतावाद वैश्विक पूँजी का अपने हित के लिए गढ़ा वैचारिक औजार है जिससे वह हमारी सांस्कृतिक चेतना को समाप्त करना चाहता था। अमेरिका के विचारक फ्रेडिक जेमेसन दुनिया भर में सांस्कृतिक स्तर पर घटित हो रहे परिवर्तनों को महायुद्ध के बाद विश्व अर्थव्यवस्था में घटित परिवर्तनों से और हमारे समय में उत्पादन की नइ संस्कृति से जोड़कर देखते हैं। वे कहते हैं-''आज कुछ खास बातें नजर आती हैं-पहली बात तो यह कि उत्तरआधुनिक समय ने स्थान और काल को लेकर एक नई तरह की स्थिति मनुष्य समाज में ला दी है। हमारे इतिहासबोध, आख्यान और स्मृति में एक महत्वपूर्ण गिरावट आयी है। इसी के साथ-साथ हमारी सौंदर्यशास्त्रीय योजना में एक प्रकार का सतहीपन पैठ गया है। अपने चारों तरफ घटती हुई घटनाओं से हमारी वह आलोचनात्मक दूरी भी कम हुई है जिसके सहारे हम अभी हाल के समय तक चीजों का विश्लेषण करते हुए अपने 'आत्मजगत' को संयोजित पाते थे।''[6] अपने आत्मजगत के लोप के कारण हम अपनी संवेगों, विचारों, भावनाओं और इच्छाओं को एक अंतहीन, असंबद्ध छवियों के रूप में पाते हैं। वैश्विक पूँजी के अपने अंतहीन विस्तार में किसी प्रकार का कोई अवरोध या हस्तक्षेप नहीं आये इसलिए यह 'आत्मलोप' उसके हित में है। बाजारवाद में उपभोक्ता के विस्तार के लिए यह 'आत्मलोप' आवश्यक है, ताकि वह नयी जरूरतों को पैदा कर सके। ***''बाजार से लेने जाता हूँ जरूरत की कोई चीज/ तो साथ ही थमा दी जाती है एक और चीज मुफ्त/ उस चीज की कोई जरूरत नहीं मुझे/ पर लेने से इंकार नहीं कर पाता उसे/ और बस इसी एक पल में पकड़ लिया जाता हूँ/ उस अतिरिक्त के लिए जरूरत की चीजों के बीच/ थोड़ी जगह बनाता हूँ/ तो जरूरी चीजों की जगह थोड़ी/ सिकुड़ जाती है।''***[7]

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

डॉ० एस० बी० के०'शशि'
हिन्दी विभाग, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर (बिहार)

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

हिन्दी कविता में इस वस्तु केन्द्रित समाज के निर्माण का प्रतिरोध है। ***''पुरानी चीजों को बदल लेने का चलन जोर पर था। जो चीज सबसे ज्यादा बदली जा रही थी/वह थी आँखें''***[8] बाजार के छद्म को बेनकाब कर हिन्दी कविता मनुष्य को जीवन के केन्द्र में रखने की पक्षधर है। ***''इस शोर-शराबे में कठिन हो गया था। उनका जीना जिन्हें अपनी नजर पर/सबसे ज्यादा भरोसा था/जो अपनी आँखों में बस/इतनी जोत चाहते थे/कि दिख सके एक मनुष्य/मनुष्य की तरह''***[9] पिछली सदी में वैश्विक पूँजी ने उत्पादन की सभी शक्तियों पर अपना नियंत्रण और उसके लिए बाजार विकसित किया था। इसी सदी में उसने आर्थिक हित को साधने के लिए उत्तर आधुनिकतावाद का अपना संस्कृति विमर्श का पाठ तैयार किया। बाजारवाद की उपभोक्ता संस्कृति मनुष्य और उसके समाज को, उसकी स्मृति और इतिहास बोध को पूरी तरह से काटकर पूरी तरह से उपभोक्ता के रूप में बदलना चाहती है। इक्कीसवी सदी में उसकी गतिविधियाँ आर अधिक बढ़ेगी। ***''एक तिलिस्म जो हमने हर पल/महसूस किया/कैसे बाजार के दलदल में फँसा आदमी/तब तक नकारता है/जब तक उसमें डूब नहीं जाता''***[10] बाजार का यह तिलिस्म मनुष्य से उसकी पहचान तक छीन लेने पर आमादा है। ***''अब हम कटे पेड़ और/समूह से निकले पट की तरह थे। हाथ कई रंगों के कोलाज में/तब्दील हो चुके थे। जिसमें हमारा कोई भी नहीं समझ पा रहे थे''***[11] हिन्दी कविता इस सदी की चुनौतियों की शिनाख्त कर चुकी है और इस वस्तु केन्द्रित बाजारवाद के प्रतिपक्ष में अपना स्वर मुखर कर रही है।

वैश्विक पूँजी से संचालित बाजार में आज सब कुछ बिकाऊ है। ***''बेच रहा कोई दिमाग, सपना बेच रहा है। श्रम ही नहीं, रक्त तक देखो, अपना बेच रहा है। पाप-पुण्य के पचड़े छोड़ों, देह बेचती नारी/गलियों में नहीं, राजपथ पर बिकती लाचारी''***[12] बेचना भर रह गया है। ***''पूरी ट्रेनिंग का सार यही था कि जब जरूरत हो प्रेम दिखाना/मुकर जाना अगर कोई, याद दिलाए/कि तुम बहुत प्यारा मुस्कराये थे। जब बेचने आये थे। यह सिर्फ ड्यूटी नहीं/इसे जीवन का एक तरीका जाना''***[13] इस बाजार में रोशनी की चकाचौंध है फिर भी मनुष्य के अंतर्मन में अंधेरा है। ***''अंधेरा से घिरा आदमी लगातार लड़ रहा है। अपने बाहर और भीतर के अंधेरों से/और सामने रोशनी से नहायी अट्टालिकाएँ हैं/कि वर्षों से हँस रही है उसकी पराजय पर''***[14] सूचना संचार क्रांति अपनी चरम उपलब्धियों के दौर में है। संचार माध्यम विश्व की पल-पल की सूचना दे रहे हैं। परन्तु इन सूचनाओं में मनुष्य और जीवन नहीं है। वैश्वीकरण का शोर है और विश्व के गाँव में बदलने की घोषणा की जा रही है लेकिन मनुष्य निपट अकेला होता जा रहा है। वह परिचय के वातावरण में चीजों से पटी दुनिया में स्तब्ध खड़ा है, पल-पल की सूचना के बीच अस्तिविहोन होकर। ***''ख्यालों की भी एक दुनिया थी, जीवंत और खूबसूरत/गो तब वर्चुअल रिएलिटी के कम्प्यूटर केन्द्रित नवयुग/का आगमन नहीं हुआ था''***[15] इक्कीसवीं सदी की पीठ पर चाबुक बरसाती हुई, सरपट भागती हुई वैश्विक पूँजी साहित्य, कला, संस्कृति को विकृत करती हुई अपनी गति और तीव्र करेगी। ***''इतिहास के अंत की घोषणा हो चुकी है। समूची दुनिया में/वैश्वीकरण के घोड़े दौड़ रहे हैं/बेखौफ... .....बेलगाम...../माँ मर गई है तो वह क्या करे/शेयर मार्केट तो बंद नहीं हो जाएगा।''***[17] वैश्वीकरण सभ्यता-संस्कृति और विचार केन्द्रित मनुष्य समाज पर निरंतर प्रहार कर रहा है।

हिन्दी कविता आरंभ से ही जनोन्मुखी रही है। इसकी चेतना का निर्माण जीवन-मूल्य विरोधी प्रतिपक्ष की भूमिका से हुआ है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक काल तक सरहपा, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, दादू, रैदास, रघुवोर सहाय, नागार्जुन, धूमिल, राजेश जोशी आदि कवियों ने इस परंपरा को और अधिक सशक्त किया है। वर्त्तमान में भी लिखी जा रही हिन्दी कविताएँ इस परंपरा को मजबूत कर रही हैं और समकालीन परिस्थितियों की तत्परता से पड़ताल कर रही है। ***''जब अर्थ शब्दों में नहीं/उसके आस-पास घूमने लगते हैं। शब्द जरा फैले से लगते हैं/चारों ओर एक भूरा आलोक-वृत्त/और जिससे वे जरा***

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

डॉ० एस० बी० के०'शशि'
हिन्दी विभाग, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर (बिहार)

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

धुंधले लगते हैं/हिलने लगते हैं अपनी जगह से/और छूटी जगहों में घूमने से अर्थाभास''[18] संचार माध्यमों के क्रांतिकारी विकास के बावजूद यह संप्रेषण का संकट है। संप्रेषण का यह संकट इक्कीसवीं सदी में और बढ़ेगा क्योंकि इस अर्थ केन्द्रित समय में संवाद निरंतर कमजोर और एकपक्षीय होता जा रहा है। ***''संप्रेषण के लिए संवाद देनेवाले और इसे ग्रहण करने वाले दोनों के जीवन के अनुभव और ज्ञान के दायरे में एक हद की समानता जरूरी है। इससे ऐसे समाज में जिसमें एक अभिजात समूह (इलीट) आम लोगों से अलग हो जाता है, दोनों के बीच संप्रेषण में एक फाँक पैदा हो जाती है।''***[19]

इस सदी में निरंतर ताकतवर होती जा रही उपभोक्ता संस्कृति संवाद की भूमिका को ही कमजोर नहीं कर रही है, वह मनुष्य को स्मृतिहीन और उपभोक्ता में बदल रही है, जीवन के केन्द्र में वस्तु को प्रतिष्ठित भी कर रही है। ***''कई बार जब बाजार चीजों से लद जाते हैं/समाज में पैदा होने लगते हैं/ नये-नये उपद्रव/चीजें एक दिन इतनी ताकतवर हो जाती है/कि बनती जाती है उनकी स्वतंत्र सत्ता/तब आदमी नहीं, चीजें तय करने लगती है/आदमी का भाग्य!!''***[20] हिन्दी कविता, जीवन में विद्यमान जो विविध जीवनमूल्य विरोधी परिस्थितियाँ है, सत्ता की निरंकुशता है, वैश्विक पूँजी की मनमानी है, मात्र इनका चित्रण ही नहीं कर रही है, जन-जीवन का जो सामाजिक भाव है, जीवन में जो निजी और वैयक्तिक प्रेम है, आत्मीयता और राग-विराग है, प्रकृति और मनुष्य के बीच सहज संबंध का भाव है, इन सभी भावनाओं को मार्मिकता और हार्दिकता से अभिव्यक्त कर रही है।

इक्कीसवीं सदी का पहला दशक बीत चुका है और इस दशक में राष्टोय-अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं, समकालीन प्रश्नों तथा उन परिवर्तनों को, जिसने हमारे समय, समाज, संस्कृति और साहित्य को प्रभावित किया, पर गंभीरता से विचार करें तो हम पाते हैं कि सूचना और तकनीकी विकास के इस दौर में वैश्विक पूँजी और अधिक शक्तिशाली हो गयी ह। इसने मनुष्य समाज के समक्ष अनेक चुनौतियाँ खड़ी कर दी रही है। ***''पिछले 10-15 वर्षों में भारतीय समाज और संस्कृति में अनेक ऐसे परिवर्त्तन हुए हैं, जिनका भारतीय समाज संस्कृति के भविष्य पर गहरा असर पड़ेगा। पिछले एक दशक में भारत में पूँजीवाद, भूमंडलीकरण के माध्यम से उन्मादी रूप में स्थापित हो रहा है।''***[21] अपने समय की चुनौतियों को हिन्दी कविता बखूबी समझती है। देवी प्रसाद मिश्र, कुमार अंबुज, अष्टभुजा शुक्ल, बद्रीनारायण, हरे प्रकाश उपाध्याय, निलय उपाध्याय, कात्यायनी, नीलेश रघुवंशी, संजय कुंदन, सुंदर चंद ठाकुर, अनीता वर्मा, व्योमेश शुक्ल आदि इस दौर में ऐसे कवि हैं, जिन्होंने मनुष्यता के संकट, बाजारवाद और वैश्विक पूँजी के प्रपंच को उजागर किया। ***''सूचना बरस रही है/आँधी तूफान और की तरह/रोशनी इतनी/कि आँखें बंद हो जाय/अब नहीं बच रहे/जीवन में कोई रहस्य/कितनीं कम जगह बच रही है/इस दुनिया में जीवन के लिए''***[22] सामाजिक संरचना में परिवर्तन और वर्तमान समय की संश्लिष्ट जटिलता की महीन परतों को हिन्दी कविता खोलती है। ***''यह संरचनाओं के बदलने का समय है/यह स्थितियों के बदलने का समय है/यह स्थितियों की प्रमुखता और उसके बदलने का समय है। यह समय को जानने से पहले उसके बदलने का समय है/यह एक ऐसा आभासी समय है, जहाँ हम होते नहीं हैं।''***[23] हिन्दी कविता ने वर्तमान की, नई आर्थिक गतिविधियों और भूमंडलीकरण से हो रहे सामाजिक मूल्यों के झर जाने की अंतर्संबंध की पड़ताल को है। अपने समय के अंतर्द्वन्द्वों को अभिव्यक्त करते हुए मानवीय संवेगों और जीवन मूल्यों को सहेजा है।

कविता मनुष्य के अंतर और बाह्य परिवेश के आत्मसंघर्ष का सृजनात्मक संवाद है। यह मानवीय संवेगों को जगाती है। ऐसे समय में जो परिवर्तन और संक्रमण का काल हो, मनुष्य की महत्ता से अधिक वस्तुओं की महत्ता हो, नये सिरे से इतिहास, सभ्यता और संस्कृति के विश्लेषण का काल हो, कविता के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उपस्थित कर देता है, यही वह समय होता है जब कविता को अपनी पक्षधरता को प्रकट करना पड़ता है। मानव सभ्यता के अतीत में मनुष्यता पर संकट की छाया पड़ती रही है और कविता दृढ़ता से मनुष्यता के पक्ष में खड़ी रही है। इक्कीसवीं सदी में भी मनुष्य के समक्ष अनेक चुनौतियाँ है, वैश्विक पूँजी का

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research

Half Yearly

Vol-3, Issue-2
15 Jul-2012

इक्कीसवीं सदी की चुनौतियाँ और हिन्दी कविता

डॉ० एस० बी० के०'शशि'
हिन्दी विभाग, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर (बिहार)

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

प्रपंच, भूमंडलीकरण, उपभोक्ता संस्कृति का प्रसार और वस्तुओं का जीवन में बढ़ता हस्तक्षेप हमारे समय का भयावह यथार्थ है, जिसका सामना हिन्दी कविता जीवन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को प्रकट करते हुए कर रही है।

संदर्भः-

1. इक्कीसवीं सदी के संकट-राम शरण जोशी, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी0 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पहली आवृत्ति-2008, पृष्ठ-17
2. वागर्थ, सुंदर चंद ठाकुर, संपादक-रवीन्द्र कालिया, प्रकाशक-भारतीय भाषा परिषद्, 36-ए0, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700017, फरवरी-2005, पृष्ठ-39
3. कथादेश, कविता में सभ्यता विमर्श-जय प्रकाश, संपादक-हरिनारायण, प्रकाशक-सहयात्रा प्रकाशन प्रा0लि0, 1001, इंद्र प्रकाश बिल्डिंग, 21-बाराखंभा रोड, नई दिल्ली-110001, मार्च 2008, पृष्ठ-70
4. वही, पृष्ठ-68
5. वागर्थ, खोई हुई चीजें-अरूण अभिषेक, संपादक-रवीन्द्र कालिया, प्रकाशक-वही, अक्टूबर-2007, पृष्ठ-46
6. वागर्थ, फ्रेड्रिक जेमेसन, वैश्विक पूँजी का सांस्कृतिक तक्र, संपादक-रवीन्द्र कालिया, प्रकाशक-वही, मई-2004, पृष्ठ-29
7. आउटलुक, अतिरिक्त चीजों की माया-राजेश जोशी, प्रधान संपादक, विनोद मेहता, प्रकाशक-आउटलुक पब्लिशिंग (इंडिया) प्रा0लि0, ए0बी0-सफदरगंज एनक्लेव, नई दिल्ली-110021, सितम्बर-2008, पृष्ठ-68
8. वागर्थ, आँखें-संजय कुंदन, संपादक-एकांत श्रीवास्तव, प्रकाशक-वही, मार्च-2008, पृष्ठ-89
9. वही, पृष्ठ-89
10. वागर्थ, केशव तिवारी, संपादक-विजय बहादुर सिंह, प्रकाशक-वही, फरवरी-2009, पृष्ठ-48
11. वही, पृष्ठ-48
12. आजकल, उदय चंन्द्र झा, 'विनोद', संपादक-सीमा ओझा, प्रकाशक-प्रकाशन विभाग, कमरा नं0-120, सूचना भवन, सी0जी0ओ0 कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, अगस्त-2009, पृष्ठ-25
13. नया ज्ञानोदय, बेचने वाले-आर0 चेतनाक्रांति, संपादक-रवीन्द्र कालिया, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल, एरिया, लोदी रोड, पो0बा0 नं0-3173, नई दिल्ली-110003, मई-2007, पृष्ठ-233
14. नया ज्ञानोदय, निर्मला पुतुल, संपादक-प्रकाशक-वही, पृष्ठ-235
15. पुनर्नवा, ज्ञानेन्द्रपति, संपादक-संजय गुप्ता, प्रकाशक-जागरण प्रकाशन लिमिटेड, 501 आई0एन0एस0 बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ-82
16. रसस
17. आलोचना, शैलेय, संपादक-अरूण कमल, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशक प्रा0लि0, नई दिल्ली, जुलाई-सितंबर-2008, पृष्ठ-52
18. संवेद, कुमार अरूण, संपादक-किशन कालजयी, प्रकाशक-संवाद फाउण्डेशन, बी0-3/44, तीसरी मंजिल, सेक्टर-16 रोहिणी, दिल्ली-110085, फरवरी-2007, पृष्ठ-286-287
19. संवेद, भमंडलीकरण और संप्रेषण का संकट-सच्चिदानंद सिन्हा, संपादक-प्रकाशक-वही, फरवरी-2007, पृष्ठ-253
20. नेपथ्य में हँसी, राजेश जोशी, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी0, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पहली आवृत्ति-2004, पृष्ठ-60
21. समयांतर, भारतीय संस्कृति और समाज : एक संवाद-मैनेजर पांडेय, संपादक-पंकज विष्ट, प्रकाशक-समयांतर, 79-ए दिलशाद गार्डन, दिल्ली-95, फरवरी-2009, पृष्ठ-24
22. पहल-90, विनोद कुमार श्रीवास्तव, संपादक-ज्ञानरंजन, प्रकाशक-पहल, 101, रामनगर, अधारतल, जबलपुर- 482004, सितंबर-अक्टूबर-2008-2008, पष्ठ-104
23. तद्भव, नवल शुक्ल, संपादक-अखिलेश, प्रकाशक-तद्भव, 18/201, इंदिरा नगर, लखनऊ-226016, अक्टूबर, 2005, पृष्ठ-160-161